बच्चे और उनके खिलौने

कमलेश जोशी

बच्चे और खिलौने का संबंध सदैव से ही रहा है। हम यह भी कह सकते हैं कि खिलौनों के बिना हम बच्चों की दुनिया की कल्पना भी नहीं कर सकते। चाहे हम बच्चों को खिलौने खरीदकर दें या न दें बच्चे अपने लिए किसी-न-किसी चीज़ (चाहे वे टूटे-फूटे डिब्बे हों या इसी तरह की अन्य सामग्री) को खिलौने की शक्ल दे ही देते हैं।

बच्चों को एकदम छुटपन से ही मुंह से या खिलौनों से अजीबो-गरीब आवाज़ें निकाल कर हम बहलाते हैं और बच्चे बहल भी जाते हैं। यही बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं, खुद भी चीज़ों को जोड़-तोड़कर खिलौने

बनाने में अपनी रचनात्मक ऊर्जा का खूब इस्तेमाल करते हैं। इसलिए भी यह ज़रूरी हो जाता है कि बच्चों की इस रचनात्मक ऊर्जा को उभारने के लिए उन्हें भरपूर मौके दिए जाएं।

बच्चे और खिलौनों का संबंध, उनका परिवेश तथा उनके द्वारा खिलौने बनाने की प्रक्रिया आदि चीज़ों पर गौर करें तो हमें यह समझने का मौका मिलता है कि बच्चे खिलौने बनाते हुए क्या-क्या सीखते हैं और कैसे सीखते हैं?

खिलौने किस्म-किस्म के

पहले हम गौर करें कि बच्चे अपने रोज़मर्रा के जीवन में कौन-कौन-सी चीज़ें बनाते हैं? इसके लिए अगर हम अपने अतीत में गोता लगाएं और अपने बचपन की दुनिया में झांकें तो तरह-तरह के खिलौनों का खज़ाना हमारी स्मृति में से निकलकर आता है – ढेर सारी माचिस की खाली डिब्बियों को बिल्कुल सरल तरीके से जोड़कर बनती रेलगाड़ी, खाली सिगरेट की डिब्बी की पिस्तौल, कागज़ से बनाई जाने वाली ढेरों चीज़ें जैसे नाव, हवाई जहाज़, तितली, नाग आदि क्या-क्या नहीं बनाते थे इन सब से।

किसी समय हमारे गांवों में मिट्टी से बहुत सारे खिलौने बनाए जाते थे। धीरे-धीरे उनका प्रचलन अब समाप्त हो रहा है। लेकिन कुछ इलाकों में ये अब भी प्रचलित हैं। मिट्टी के इन खिलौनों को आज भी गांवों-कस्बों के मेलों में देखा जा सकता है। इनके बारे में सोचते हुए हमें प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' की याद आती है। "मिट्टी के खिलौनों की खास बात यह है कि उनसे खेलते हुए वे टूट भी जाएं तो टूटने का कोई गम नहीं।" बच्चों के खेलने के दौरान टूट-फूट तो होती ही है लेकिन हम बड़ों की चिन्ता होती है कि खिलौना न टूटे और फिर इससे होता यह है कि बच्चे अपने खिलौनों से खेल नहीं पाते और खिलौने केवल शो पीस बनकर रह जाते हैं।

स्कूल और मिट्टी के खिलौने

मिट्टी के खिलौनों के बारे में एक कड़ुवा सच यह है कि हमारे प्राथमिक विद्यालयों में इस गतिविधि को कोई महत्व नहीं दिया जाता। मेरे बचपन के दिनों में केवल नाम मात्र के लिए तीसरी, चौथी, पांचवीं कक्षा की छमाही व सालाना परीक्षाओं में हमें घर से मिट्टी के खिलौने बनाकर ले जाने होते थे और इन्हें हम पड़ोस की चाची या दीदी से बनवा लेते थे। और बनवाते भी क्या थे – कुछ फल जैसे केला, खरबूजा, आम आदि। कुछ सब्ज़ियां जैसे भिंडी, मिर्ची, बैंगन आदि; इन चीज़ों के अलावा हमारे पास अन्य चीज़ों का विकल्प नहीं था।

इस गतिविधि की ओर स्कूल में कुछ खास ध्यान नहीं दिया जाता था। धीरे-धीरे मन में यह बात बैठ गई कि हम जल्दी से जल्दी पांचवीं कक्षा पास करें तो इनसे पीछा छूटे।

कुल मिलाकर इन चीज़ों को बनाने-बनवाने में हमारे शिक्षकों की भी कोई रुचि नहीं थी। अन्य किसी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। हां, यह ज़रूर याद पड़ता है कि कुछ साथियों का इस कार्य में बहुत मन लगता था। इसे हम स्कूल की छमाही-वार्षिक परीक्षा वाले दिन ही देख पाते थे। उस दिन एक सीखने की ललक बनती थी कि कुछ हम भी सीखें। लेकिन उस परीक्षा के बाद फिर छः महीने इस काम से छुट्टी, सो यह ललक भी ज़्यादा देर तक टिक नहीं पाती थी। लेकिन अब मुझे लगता है कि छोटे बच्चों के हाथों व उंगलियों के कुशल संचालन के लिए यह खेल काफी ज़रूरी है। यह बच्चों को खुद करके सीखने का एक अनुभव भी देता है। उनकी इंद्रियों के विकास के लिए तो यह ज़रूरी है ही। इन खिलौनों के निर्माण में बच्चे खुद करते हुए चीज़ों को महसूस करते हैं और निर्जीव मिट्टी को आकार देते हुए उसमें प्राण फूंकते हैं। इस कार्य में रचनात्मकता तो स्वाभाविक रूप से छिपी हुई है क्योंकि बच्चे अपनी कल्पना या अवलोकन को साकार करने की कोशिश कर रहे हैं। छोटी कक्षाओं में यह इसलिए भी ज़रूरी लगता है क्योंकि बच्चे इन खिलौनों में रंग भरते हुए कुछ डिज़ाइन बनाते हैं और स्वयं रंगों का चुनाव करते हैं। इस बात को हम में से कई लोगों ने अनुभव किया होगा

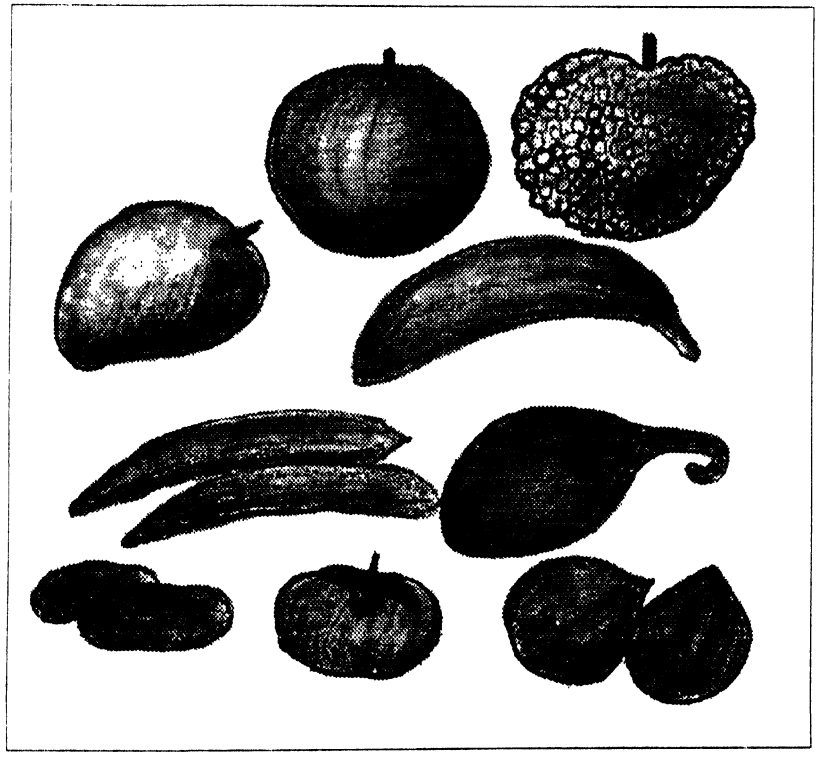

कि इस प्रक्रिया से बच्चों में एक सौन्दर्य-बोध का विकास भी होने लगता है।

पॉलिश की डिब्बी से गाड़ी

मिट्टी के खिलौनों के बाद अब हम अन्य खिलौनों पर गौर करें जिनको बनाने में बच्चे स्वयं चीज़ों का जुगाड़ करते हैं। बचपन में हम खाली पॉलिश की डिब्बी ढूंढा करते थे, उसे कील से एक डंडे में ठोककर गाड़ी बनाते थे। गाड़ी बनाने के बाद उसे चलाते थे। इसे चलाने का असली मज़ा पानी-कीचड़ व ऊबड़-खाबड़ जगहों पर ही ज़्यादा है। बच्चे इस काम को एकाग्रचित होकर करते हैं।

इस गाड़ी को बनाने के लिए सारी चीज़ें हम जुटाते थे। इसके बाद इस गाड़ी को बनाते भी हम खुद थे। अगर सही नहीं बनती थी तो अपने हमउम्र बच्चों की मदद भी लेते थे। कोई पूछ सकता है कि इस बनाने की प्रक्रिया में सीखना क्या है? सबसे पहले हमें यह सोचना पडता था कि खाली पॉलिश की डिब्बी कहां से मिल सकती है? इसके बाद कील का जुगाड़ करना पड़ता है, फिर डंडे को तोड़कर लाना, इसके बाद हमें यह ध्यान देना होता है कि कील डिब्बी के बीच में ठोंकी जानी चाहिए। कील को डंडी में ठोकते हुए यह ध्यान में रखना होता है कि इसे ऐसे ठोंकना है कि डिब्बी आसानी से घूम सके। इसलिए ज़्यादा ऊपर या नीचे नहीं होना चाहिए।

यह प्रक्रिया पढ़ते वक्त तो साधारण-सी लगती है लेकिन इसमें एक बच्चे के नज़रिए से सघन मानसिक क्रिया है। और यह मानसिक क्रिया बच्चों के लिए रोचक और मज़ेदार भी है। इस आनंद को बच्चे ही महसूस कर सकते हैं। जब यह गाड़ी तैयार होती है तो बच्चों के चेहरे की खुशी देखने लायक होती है। अहसास बिल्कुल वैसा होता है जब हम काफी खोजबीन के बाद किसी समस्या या पहेली का हल ढूंढने पर महसूस करते हैं। इसे ही हम सीखने का आनन्द कहते हैं। हालांकि उक्त प्रक्रिया बहुत सहज लगती है क्योंकि बच्चे इसे बनाने का अभ्यास इतनी बार कर चुके होते हैं कि इसे तुरन्त बना लेते हैं।

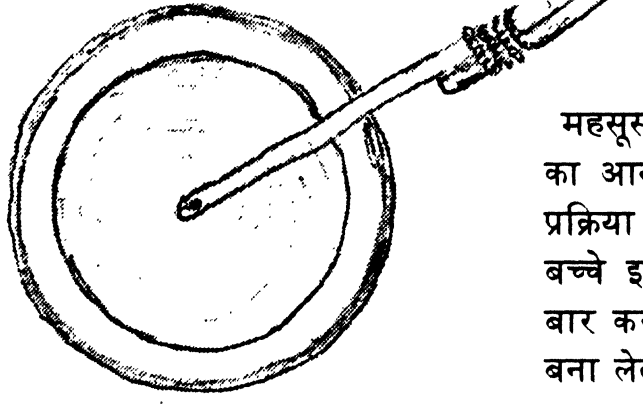

आठ साल के बच्चे द्वारा बनाई गई मिट्टी की नाव और मल्लाह।

खैर, गाड़ी बनाने की प्रक्रिया पर वापस आएं तो समझ में आता है कि डिब्बी वाली गाड़ी को बनाने के लिए ज़रूरी सामान का हमें मन-ही-मन अंदाज़ा लेना पड़ता था। कभी-कभी इसे बनाते हुए गलती हो जाती तो उसे खुद ठीक भी करते थे। काफी प्रयासों के बाद भी अगर असफल रहते तो अपने से बड़ों की मदद लेते। खिलौना निर्माण की इस प्रक्रिया पर हम बारीकी से गौर करें तो महसूस होता है कि इसमें गौण रूप से विज्ञान व तकनीक भी छिपी हुई है। इस प्रक्रिया के बारे में आज सोचते हुए लगता है कि हमारे प्राथमिक विद्यालयों में होने वाली मौखिक या मन-गणित की परीक्षा में क्या ऐसे क्रिया-कलापों को नहीं जोड़ा जा सकता?

इसी तरह से कागज़ के द्वारा बनाई जाने वाली तमाम चीज़ें बच्चे अपने मित्रों से व परिवेश में ही सीखते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि खिलौनों के निर्माण के दौरान बच्चे एक दूसरे से बखूबी सीखते हैं।

इन सब चीज़ों में सहज रीति से बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं। यह प्रक्रिया बच्चों के व्यक्तित्व विकास का अभिन्न अंग है। अंत में सवाल यह उठता है कि इन्हें हमारे विद्यालय के पाठ्यक्रम

में कितनी जगह मिलती है? इसका उत्तर सबको मालूम है कि ये सब चीज़ें गौण समझी जाती हैं। महसूस होता है कि हमारे विद्यालय अभी भी इस मानसिकता से ग्रसित हैं कि बच्चों के लिए किताब, तथ्य, अवधारणाएं ही ज़्यादा ज़रूरी हैं। उनके लिए कौशल गौण हैं। इसमें विद्यालय की प्रणाली को दोष दें तो लगता है कि व्यवस्था ही गड़बड़ है। अब आप ही सोचिए कि बुनियादी ज़ोर किन-किन चीज़ों पर दिया जाए।

कमलेश चन्द्र जोशी: लखनऊ की नालंदा संस्था में कार्यरत हैं। बच्चों के साथ गतिविधियां करवाने में विशेष रुचि।

चित्र: वी. एम. भोंडे। शौकिया चित्रकार, होशंगाबाद में रहते हैं।

'संदर्भ' मराठी में भी उपलब्ध

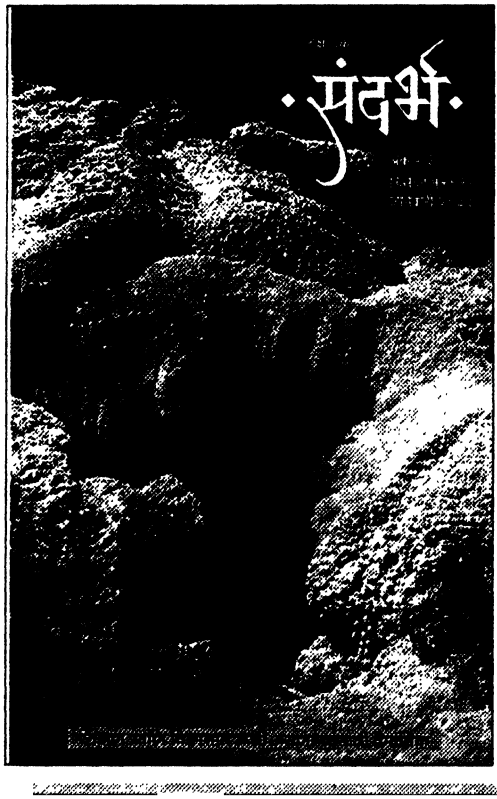

अब संदर्भ मराठी में भी उपलब्ध है। मराठी संदर्भ भी द्वैमासिक है और इसका सदस्यता शुल्क 100/– रुपए है। सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर से भेज सकते हैं।

सदस्यता शुल्क भेजने अथवा और अधिक जानकारी के लिए निम्न पते पर सम्पर्क करें।

'मराठी संदर्भ'
द्वारा, अमृता क्लिनिक
संभाजी पुल कॉर्नर, कर्वे रोड़
पुणे, महाराष्ट्र पिनः 411004